उत्तर वैदिक काल में आर्यों के सामाजिक जीवन

Course – M.A. History Part I; Paper – III; Prepared by – Dr. P.K. Saddar

आर्यों के इतिहास में उत्तर वैदिक काल सबसे महत्त्वपूर्ण समय था। इस समय आर्यों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए जिसने आगे ~~चलकर~~ आने वाली भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का स्वरूप काफी हद तक प्रभावित किया। उत्तर वैदिक युग की जानकारी के लिए हमारे पास विभिन्न स्रोत हैं। इनमें सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद – प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों से भी इस काल की जानकारी मिलती है। उत्तर वैदिक काल का चरण 1000 ई०पू० से 600 ई० पू० तक माना जाता है। उत्तर वैदिक काल में आर्यों के सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे।

सामाजिक जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था – वर्ण व्यवस्था का जटिल होना। अब कर्म के स्थान पर वर्ण ही महत्त्वपूर्ण बन गया। ब्राह्मण और क्षत्रिय समाज के सर्वश्रेष्ठ सुविधा एवं विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग बन गये। वैश्य और शूद्र सुविधाविहीन वर्ग थे। इस प्रकार उत्तर वैदिक काल का समाज चार वर्णों में विभक्त हो गया था – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। समाज में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का स्थान श्रेष्ठ हो गया। ब्राह्मणों ने अपनी श्रेष्ठता का दावा किया। इस संदर्भ में क्षत्रिय भी पीछे नहीं रहे। क्षत्रिय तीन वर्णों पर अपना आधिकार स्थापित करने की भरपूर कोशिश की। फलस्वरूप ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों में श्रेष्ठता के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ी। फिर भी इन दोनों वर्णों ने अन्य वर्णों के खिलाफ एक दूसरे की मदद कर अपनी श्रेष्ठता बनाए रखी। इस वैदिक काल में यह वर्ण विभाजन उतना कठोर नहीं था, परन्तु अब इसमें कठोरता आने लगी। उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था अपने

निश्चत वर्ग-आकार और वर्ग-संघर्ष की ओर द्रुत गति से बढ़ती जारही थी। जैसे- जैसे ब्राह्मणों का महत्व बढ़ता गया, वर्णों का पारस्परिक सम्पर्क अश्रद्धा की दृष्टि से देखा जाने लगा। उच्च वर्ण वालों को कुछ विशेषाधिकार भी मिले हुए थे। उदाहरणस्वरूप, उच्च वर्ण वाले पुरुष निम्न जाति की कन्याओं से विवाह कर सकते थे परन्तु निम्न श्रेणी का पुरुष अपने से ऊंचे वर्ण ~~में विवाह~~ की स्त्रियों से विवाह नहीं कर सकता था। अन्तर्जातीय विवाह हो सकते थे परन्तु शूद्रों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना निन्दनीय और धर्मविरोधी समझा जाने लगा। चाण्डालों, दासों इत्यादि को वर्ण व्यवस्था के बाहर रखा गया। शूद्रों पर अनेक प्रतिबंध लगाए गए। शूद्रों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। उनका स्पर्श एवं संसर्ग निन्दनीय और अवांछनीय माना गया। उच्च वर्णों की सेवा करना ही उनका कर्तव्य था। राजा अपनी इच्छा के अनुसार उन्हें आतंकित या दंडित भी कर सकता था। शूद्र धार्मिक कर्मकांडों में भाग नहीं ले सकते थे। वर्ण सम्बन्धी जटिलता बढ़ती जारही थी। अब वर्ण निर्धारण कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर किया जाने लगा। इस जटिलता ने आगे चलकर जाति-व्यवस्था को जन्म दिया।

सामान्यतः उत्तर वैदिक कालीन समाज में तीन उच्च वर्णों और शूद्रों के बीच में एक विभाजन - रेखा देखने को मिलती है। फिर भी राज्याभिषेक से सम्बन्धित ऐसे कई सार्वजनिक अनुष्ठान थे जिनमें शूद्र, मूल कबीले के सदस्यों की हैसियत से, भाग लेते थे। कुछ खास वर्गों की शिल्पियों को, जैसे रथकारों को, समाज में ऊंचा स्थान प्राप्त था, और उपनयन संस्कार के अधिकारियों की सूची में इन्हें सम्मिलित किया गया था। इसलिए प्रो० आर० एस० शर्मा का कहना है कि उत्तर वैदिक

काल में अभी वर्ण भेद की दिशा में बहुत अधिक प्रगति नहीं हुई थी।

परिवार में पता चलता है कि, पिता की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई थी। यहाँ तक कि पिता अपने पुत्र को भी उत्तराधिकार से वंचित रख सकता था। राज-परिवारों में ज्येष्ठाधिकार को अधिकाधिक महत्व दिया जाने लगा था। पूर्व-पुरुषों की पूजा होने लगी थी।

उत्तर वैदिक काल की सामाजिक व्यवस्था की एक मुख्य विशेषता 'आश्रम व्यवस्था' थी। इस काल में मनुष्य की आयु 100 वर्ष आँक कर उसे चार बराबर भागों में विभक्त कर दिया गया- ① ब्रह्मचर्य ② गृहस्थ ③ वानप्रस्थ और ④ संन्यास। जीवन का पहला काल ब्रह्मचर्य था। इस अवधि के दौरान व्यक्ति गुरु कुल में रहकर कठोर नियम और अनुशासन का पालन करते हुए विद्यार्जन करता था। दूसरा चरण गृहस्थ जीवन था। इसमें विवाह कर पुत्र पैदा करना, धन कमाना और अतिथि सत्कार करना व्यक्ति के प्रमुख कर्तव्य माने जाते थे। गृहस्थाश्रम को बहुत ही आदर से देखा जाता था। गृहस्थाश्रम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार सभी बड़ी और छोटी नदियाँ समुद्र में जाकर विश्राम ~~करती~~ पाती हैं, उसी प्रकार सभी आश्रमों के व्यक्ति गृहस्थ पर निर्भर रहते हैं। तीसरा आश्रम वानप्रस्थ का था। इस अवस्था में मनुष्य अपनी गृहस्थी का भार अपने पुत्रों को सौंपकर सांसारिक जीवन से विरक्त होकर त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करता था। ऐसे व्यक्ति गाँवों से बाहर वन में कुटी बनाकर रहते थे तथा ब्रह्मचारियों को शिक्षा देते थे। जीवन का अंतिम चरण संन्यास का था। इस अवधि में मनुष्य संन्यासी का जीवन व्यतीत करते हुए मोक्ष की

प्राप्ति का प्रयत्न करता था। इस प्रकार आर्यों ने मानव-जीवन के चार महान पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए इस आश्रम व्यवस्था को आधार बनाया।

उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट स्पष्ट तौर पर दृष्टिगोचर होती है। पुत्र की कामना पूर्ववत की ~~जाती~~ जाती रही, परन्तु अब पुत्रियों का जन्म अभिशाप माना जाने लगा। ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्र को परिवार का रक्षक एवं पुत्रियों को दुःख का कारण बताया गया है। कन्या का जन्म ही कष्ट का सूचक समझा जाता है। कन्याओं को बेचने तथा दहेज लेने के कई उदाहरण मिलते हैं। उनके राजनीतिक, धार्मिक अधिकारों में कमी आ गई। स्त्रियों को सभा-समितियों में भाग लेने से रोक दिया गया। धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्रियों का स्थान पुरोहितों ने ले लिया। लड़कियों की शादी कम आयु में करने पर जोर दिया जाने लगा। उच्च वर्णों में बहुविवाह (बहुपत्नीत्व) की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। स्त्रियों को पूर्णतः पुरुषों के अधीन कर घर की चहारदीवारी के भीतर बंद कर दिया गया। यद्यपि कुछ विपरीत उदाहरण भी मिलते हैं। जहाँ स्त्रियाँ नृत्य-संगीत, विद्या में पारंगत होती थी। गार्गी, वाचक्नवी और मैत्रेयी के दृष्टान्तों से यह स्पष्ट है। स्त्री की सर्वाधिक गिरी हुई स्थिति मैत्रायणी संहिता में देखने को मिलती है जहाँ जुआ और शराब की भाँति स्त्री को पुरुष का एक तीसरा मुख्य दोष बताया गया है। इस प्रकार, पूर्व वैदिक काल की तुलना में इस काल में स्त्रियों की अवस्था में काफी परिवर्तन हो गया था।

आर्यों के पारिवारिक जीवन, खान-पान, वस्त्र-आभूषण इत्यादि में कोई ~~परिवर्तन~~ महत्वपूर्ण परिवर्तन इस काल में नहीं हुआ। परिवार का मुखिया अब भी सम्माननीय व्यक्ति था। विमाता के

आदर का भी प्रमाण मिलता है। किंतु पारिवारिक जीवन में कभी-कभी कटुता भी आ जाती थी। आर्यों का नैतिक जीवन अब भी श्रेष्ठ था। सदाचार और सत्कर्म उनके जीवन के आधार थे।

उत्तर वैदिक काल में गोत्र व्यवस्था स्थापित हुई। गोत्रीय बहिर्विवाह की प्रथा शुरू हो गई। एक ही गोत्र अथवा पूर्व-पुरुषवाले समुदाय के सदस्यों के बीच विवाह पर प्रतिबंध लग गया।

इस युग में शिक्षा की प्रगति हुई। विद्यार्थियों के लिए 'उपनयन-संस्कार' बना दिए गए, परन्तु स्त्रियों और शूद्रों के लिए इस पर पाबंदी थी। विद्यार्थियों को गुरुकुल में रहते हुए गुरु की सेवा कर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। राज्य अभी शिक्षा की व्यवस्था नहीं करता था। शैक्षणिक विषयों में देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, नक्षत्रविद्या, तर्कशास्त्र, इतिहास, उपनिषद् आदि प्रमुख थे। अभी भी मौखिक शिक्षा ही दी जाती थी। लगभग 12 वर्षों तक विद्यार्थियों को गुरुकुल में रहकर शिक्षा पूरी करनी पड़ती थी।

उत्तर वैदिक युग में व्यक्तिगत सम्पत्ति के उदय ने सामाजिक असमानता भी उपस्थित कर दी। उत्तर वैदिक साहित्य में भूमि के दान एवं खरीद का उल्लेख मिलता है। इस व्यवस्था ने व्यक्तिगत स्वामित्व, सम्पत्ति एवं सामाजिक असमानता की भावना उत्पन्न कर दी। जिनके पास अधिक जमीन थी (क्षत्रिय एवं ब्राह्मणों के पास) उनकी समाज में विशिष्ट स्थिति बन गई। ऐसे व्यक्ति दास भी रखते थे। अथर्ववेद से पता लगता है कि स्त्री-दासियों द्वारा अनाज की पिसाई कराई जाती थी। ऐसी व्यवस्था में आर्थिक रूप से

कमजोर व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति भी दयनीय हो गई, उनकी स्वतंत्रता समाप्त हो गई, वे दूसरों पर आश्रित बन बैठे। फलस्वरूप, पूर्व-वैदिक काल की सामाजिक समानता समाप्त हो गई और सामाजिक असमानता फैल गई।

उत्तर वैदिक काल में आर्यों का विस्तार हुआ और वे लोग जंगलों को साफ करते हुए आगे बढ़ते गए। जनसंख्या की वृद्धि के परिणामस्वरूप बड़े-बड़े ग्रामों और नगरों का विकास हुआ। कच्ची और पक्की ईंटों से घर बनता था और इसमें मिट्टी और लकड़ी का भी व्यवहार होता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर वैदिक काल में सामाजिक ढाँचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। समाज का पूर्ण रूप से चार वर्णों में विभाजन हो गया। स्त्रियों की दशा तो अत्यन्त ही शोचनीय थी। वस्तुतः उत्तर वैदिक काल में आर्यों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों के द्वारा आर्यों के जीवन में स्थायित्व आया।